षष्ठ अध्याय

धार्मिक स्थिति

षष्ठ अध्याय

धार्मिक स्थिति

धर्म, भारतीय-समाज का प्राण है। यह समाज में प्रतिष्ठा प्रदान करने वाला एक प्रमुख तत्त्व है। चतुर्वर्ग (धर्म,अर्थ,काम और मोक्ष)की प्राप्ति भारतीय-जीवन का परम उद्देश्य है,क्योंकि यहां धर्म को प्रथम स्थान दिया गया है। धर्म में जैसी श्रद्धा,प्रीति यहां दृष्टिगोचर होती है वैसी अन्यत्र नहीं। यही प्रमुख हेतु है,जिसे भारत ने पुरातन समय से ही पृथ्वी पर स्थित सभी देशों को मार्ग दर्शन कराया। विभिन्न कार्यों तथा आचार विचारों में व्यहृत भारतीयों ने धर्म, निष्ठा, तेज, ओज, बल आदि का सृजन किया जो समस्त संसार में प्रसारित हुआ। भारत में धर्म को सदैव उच्च स्थान दिया गया है अत: यही कारण है कि देवता भी यहां जन्म लेने की इच्छा करते हैं।

''धृ'' धातु से मन् प्रत्यय जोड़ने से धर्म शब्द की व्युत्पत्ति होती है। जैसे, अग्नि में उष्णता के न होने से अग्नि की कोई सत्ता नहीं होती, उसी प्रकार धर्म के बिना समाज को भी कोई सत्ता नहीं है। संसार में रक्षा और विनाश की प्रवृत्ति धर्म से ही आई है। इसलिए कहा भी गया है ''धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित:।'' धर्म शब्द बड़ा व्यापक है। कुलधर्म, जातिधर्म तथा वंशधर्म आदि इसकी सीमाएँ हैं। जीवन के नैतिक नियम 'धर्म' शब्द के अन्तर्गत आते हैं। मनु ने सत्य, संयम, क्रोध, आदि धर्म के दस गुण माने हैं। धर्म, नित्य है और इससे अर्थ और काम की प्राप्ति होती है। धर्म, मनुष्य के शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक विकास को बढ़ाता है। दरिद्रों पर दया, असहायों, की सहायता, सत्य का पालन, न्याय की रक्षा, गुरुओं का सत्कार, विद्या का परिग्रहण, नीति-पथ का अनुसरण, वचनों की रक्षा, नारियों का सम्मान आदि को भारत में धर्म द्वारा निर्देशित किया जाता है।

भास के नाटकों में ब्राह्मण धर्म का विशद विवेचन है। वस्तुत: भास के नाटकों में ब्राह्मण धर्म और धर्म के सिद्धान्तों का जितना वर्णन हुआ है, शायद ही किसी नाटककार के

नाटकों में हुआ हो। यदि भास के नाटकों को ब्राह्मण धर्म का दर्पण मान लिया जाए तो इस में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

लोग श्रीराम को सब की रक्षा करने वाला समझते थे।[1] राम को ही ईश्वर का रूप समझा जाता था। उनके विषय में लोगों का विश्वास था:-

राम-लोकत्रय के उत्पादक भगवान् नारायण को नमस्कार है।

'हे लोकत्रयाधीश, ब्रह्मा आप के हृदय, रुद्र आपके कोप, चन्द्र-सूर्य आपके नेत्र और सरस्वती आपकी जिह्वा है। ब्रह्मा, इन्द्र तथा देवों से युक्त इस त्रिभुवन की सृष्टि आपने ही की है, यह सीता कमलालया लक्ष्मी हैं, आप विष्णु हैं, आप इन्हे स्वीकार करें॥३०॥'[2]

लोग श्री कृष्ण को ईश्वर मानते थे और उनके विचार में श्री कृष्ण सब लोगों की रक्षा करने वाले हैं।[3]

---

1. सूत्रधार :-
   सीताभ्य: पातु सुमन्त्रतुष्ट: सुग्रीवराम : सहलक्ष्मणश्च।
   यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम् ॥
   — प्रतिमा०१.१

2. राम :-
   नमो भगवते त्रैलोक्यकारणाय नारायणाय।
   ब्रह्मा ते हृदयं जगत्त्रयपते! रुद्रश्च कोपस्तव
   नेत्रे चन्द्रदिवाकरौ सुरपते ! जिह्वा च ते भारती।
   सब्रह्मोन्द्र मरुद्गणं त्रिभुवनं सृष्टं त्वयैव प्रभो!
   सीतेयं जलसम्भवालयरता विष्णुर्भवान् गृह्यताम्॥
   —अभि० ६.३०

3. सूत्रधार :-
   शङ्खक्षीरवपुः पुरा कृतयुगे नाम्ना तु नारायण-
   स्त्रेतायां त्रिपदार्पितत्रिभुवनो विष्णु : सुवर्णप्रभ:।
   दूर्वाश्यामनिभ : स रावणवधे रामो युगे द्वापरे
   नित्यं योऽञ्जनसन्निभ: कलियुगे व: पातु दामोदर: ॥
   - बाल. २.१

इन्द्र और भगवान् शिव की पूजा की जाती थी।[1] भगवान् अगस्त्य की आराधना भी की जाती थी और उसकी आराधना के लिए विद्याधर लोग उत्सव भी किया करते थे।[2] देव-मूर्तियों को प्रणाम किया जाता था और बिना मन्त्र पढ़े प्रणाम करना अच्छा नहीं समझा जाता था।[3] धर्मार्थ मन्दिर बने हुए थे, जिन में विश्राम करने के लिए भी स्थान होता था।[4] फल-पुष्प आदि उपकरणों से देव पूजा की जाती थी।[5] ईश्वर के विषय में लोगों का विश्वास था।

नारद

यह भगवान् नारायण हैं।

'इनकी शक्ति का अन्त नहीं, कमल-दल के समान इनके नेत्र विशाल हैं। ये देवताओं के भी आदिदेव हैं और राक्षसों की शक्ति के नाशक हैं। तीनों लोकों की पताका हैं, संसार के कर्त्ता हैं, प्राणिमात्र के पोषक और पुराण-पुरुष हैं ॥७॥'[6]

---

1. पातु वासवदत्तायो महासेनोऽतिवीर्यवान्।
   वत्सराजस्तु नाम्ना सशक्तियौगन्धरायण :॥
   — प्रतिज्ञा० १.१
2. विद्याधर:- अद्य भगवन्तमगस्त्यमाराधयितुं मलयपर्वते विद्याधरैरुत्सव: प्रारब्ध :।
   — अवि०४ . १२ के बाद का गद्य।
3. भरत:-
   कामं दैवतमित्येव युक्तं नमयितुं शिर : ।
   वार्षलस्तु प्रणाम: स्यादमन्त्रार्चितदैवत: ॥
   —प्रतिमा० ३.५
4. भरत :- (रथादवतीर्य) सूत ! एकान्ते विश्रामयाश्वान्।
   — प्रतिमा० ३.४ के बाद का गद्य।
5. सीता-आर्ये ! उपहारसुमन आकीर्ण : सम्मार्जित आश्रम : । आश्रम-पदविभवेनानुष्ठितो देवसमुदाचार :।
   — प्रतिमा० , ५.१ के पूर्व का गद्य
6. नारद:
   एष भगवान् नारायण :,
   अनन्तवीर्य : कमलायताक्ष: सुरेन्द्रनाथोऽसुरवीर्यहन्ता।
   त्रिलोककेतुर्जगतश्च कर्ता भर्ता जनानां पुरुष: पुराण: ॥
   — बाल० १.७

लोगों का विश्वास था कि भगवान् शत्रुओं के विनाश के लिए और संसार की रक्षा के लिए अवतार धारण करते हैं। [1] लोग विष्णु की पूजा करते थे। [2] वृक्षों की भी पूजा की जाती थी। जिस आम्र के वृक्ष की मंजरी निकल आई होती थी, उसकी उपासना अच्छी समझी जाती थी।[3] गोधन की रक्षा के लिए युद्ध करना धर्म माना जाता था और यदि ऐसे युद्ध में मृत्यु हो जाती थी तो समझा जाता था कि यश मिलेगा। [4] मृत्यु में लोगों का विश्वास था जैसे कि-

'मरण के समय, कौन किसे बचा सकता है ? रस्सी के टूटने पर कौन वृक्ष को धारण करते हैं (गिरने से बचा सकते हैं) ? इसी प्रकार मनुष्य वृक्षों के समान धर्मवाला है जो (वृक्ष)समय-समय में काटा जाता है और उत्पन्न भी हो जाता है।' [5]

---

1. अव्यक्तादिरचिन्त्यात्मा लोकसंरक्षणोद्यतः।
   एकोऽनेकवपुः श्रीमान् द्विषद्बलनिषूदन : ॥दूतवा., १-४३
2. पादः पायादुपेन्द्रस्य सर्वलोकोत्सवः स वः।
   व्याविद्धो नमुचिर्येन तनुताम्रनखे नखे ॥१॥
   —दूतवा : १.१
3. चेटी-अज्जुके ! उद्धृतपुष्पं सहकारं मधुकारा उपासते ।
   —चारु० अंक २,पृ.४७
4. धनुरुपनय शीघ्रं कल्प्यतां स्यन्दनो मे
   मम गतिमनुयातु च्छन्दतो यस्य भक्तिः।
   रणशिरसि गवार्थे नास्ति मोघः प्रयत्नो
   निधनमपि यशः स्यान्मोक्षयित्वा तु धर्म : ॥
   — पञ्च., २.५
5. कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ?
   एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥
   — स्व० वा० ६.१०

6.1. धर्म एवं नीति

6.1.1. संस्कार

भास के समय में धर्म के क्षेत्र में संस्कारों का विशेष स्थान था। मनुष्य, अपने नाम के अनुरूप शरीर और आत्मा का शोधन एवं परिष्कार करते थे। केवल इस जन्म में ही नहीं अपितु पुनर्जन्म की व्यवस्था में भी संस्कारों का योग समझा जाता था। संस्कारयुक्त मनुष्य को 'द्विज' कहा जाता था। आलोच्य-नाटकों में पुंसवन, जातकर्म, उपनयन[1], समावर्तन[2], विवाह[3], और अन्त्येष्टि [4], संस्कारों का विशेषता से निरूपण किया गया है।

शुद्धि-संस्कारों में 'पुंसवन' प्रथम स्थान पर समझा जाता था। यह गर्भाधान के तृतीय मास में सम्पन्न होता था। इसमें सारे दिन उपवास की हुई पत्नी को पति दही में एक यव की दाल तथा दो मास के दाने मिलाकर तीन बार पीने को देता था और प्रत्येक समय उससे यह पूछता था-'तुम क्या पी रही हो ?'। इसके उत्तर में पत्नी हर बार 'पुंसवने पुंसवने' कहती थी।

बालक के जन्म के पश्चात् ' जात- कर्म ' ऐसा संस्कार था जो सर्व प्रथम सम्पन्न किया जाता था । यह नालाच्छेद से पूर्व किया जाता था। पिता पुत्रोत्पत्ति की सूचना प्राप्त करते ही बालक का मुख देखता था तथा स्नान और मार्जन के पश्चात् विधिपूर्वक पितरों का श्राद्ध करने के पश्चात् बच्चे को घी मिश्रित मधु चटाता था ।

---

1. तस्य पुत्रोपनयनार्थं सकलत्रोऽस्मि प्रस्थितः।
   — मध्यम., अंक १, पृ० २८
2. कस्मात् त्वं कृतसमावर्तो बटुक इव त्वरसे ?
   — अवि०अंक० ४, पृ. ११८
3. तच्चित्रफलकस्थयोर्वत्सराजवासवदत्तयोर्विवाहोऽनुष्ठीयताम्,
   —प्रतिज्ञा०, अंक ४, पृ० १२९
4. हन्त स्वर्गं गतो बाली । सुग्रीव। क्रियतामस्य संस्कार :।
   — अभि०, अंक 1 पृ०, २२

'उपनयन - संस्कार ' को 'यज्ञोपवीत - संस्कार ' भी कहा जाता था।[1] इस संस्कार के सम्पन्न होने पर बालक यज्ञोपवीत धारण कर ब्रह्मचारी बन जाता था तथा विद्या का अध्ययन आरम्भ कर देता था । 'मानव - धर्मशास्त्र ' के आदेशानुसार ब्राह्मण , क्षत्रिय और वैश्य के लिए उपनयन का समय क्रमश: आठ से सोलह , ग्यारह से बाईस और बारह से चौबीस वर्ष तक समझा जाता था । ऐसे अवसर पर सम्बन्धियों को सम्मिलित किया जाता था।[2]

'समावर्तन - संस्कार ' को विद्याध्ययन की समाप्ति पर ही मनाया जाता था । गुरु की अनुमति से ब्रह्मचारी का वेदानुशीलन के पश्चात् घर लौटना ही समावर्तन कहलाता था।

समावर्तन के पश्चात् 'विवाह - संस्कार' का विशेष महत्त्व माना जाता था । इसमें बह्मचारी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था । मृत-मनुष्यों का संस्कार चिता जला कर किया जाता था[3] और मृत्यु के पश्चात् 'अन्त्येष्टि - संस्कार ' किया जाता था । इसमें समस्त मृतक क्रियाओं का समावेश होता था । मृतक के शव को स्पर्श करना अशुद्ध माना जाता था । ऐसी अशौच की शुद्धता के लिए यमुना आदि नदी में स्नान करने की प्रथा थी ।[4]

---

1. गणिका :- हञ्जे ! एष हि स आर्यचारुदत्त एव यज्ञोपवीतमात्रप्रवारको गच्छता

   चारु०, अंक २,पृ. ६२

2. वृद्धः- ...... तस्य पुत्रोपनयनार्थं सकलत्रोऽस्मि प्रस्थितः ।

3. दूत. १.९ — मध्य० १.३१ के बाद का गद्य।

4. भर्तः, अशौचितोऽस्मि, मृता दारिका गृहीता । मुहूर्तकं प्रतिपालयतु भर्ता यावद् यमुनाजलं गत्वा शौचं करोमि।

   — बा०च०, अंक १, पृ० २१

पिता की मृत्यु सुनकर पुत्र मूर्च्छित हो जाते थे।[1] पितरों की स्मृति में सांवत्सरिक[2] और वार्षिक श्राद्ध[3] किया जाता था। श्राद्ध के दिन श्रद्धानुसार दान का आयोजन किया जाता था।[4] ऐसे अवसर पर मनुष्यों के लिए घासों में कुश, औषधियों में तिल, शाकों में कलाय, मत्स्यों में महाशफर, पक्षियों में वाध्रीणस (काली गर्दन, लाल सिर वाला पक्षी) और पशुओं में गाय या खड्ग का विधान होता था।[5] कांचीनपार्श्व मृगों के मांस से पितरों का श्राद्ध करना उत्तम माना जाता था। इससे तृप्त पितर, पुत्रलाभ का फल प्राप्त करते थे। वे देवों के साथ विमानों में निवास करते थे और आवागन के बन्धन से मुक्त हो जाते थे।[6]

मृत-पुत्रों को माता-पिता के द्वारा जलाञ्जलि दी जाती थी।[7]

---

1. भरतः- हा तात! (मूर्च्छितः। पुनः प्रत्यागत्य)

— प्रतिमा., ३.७ के बाद का गद्य

2. श्वस्तत्रभवतस्तातस्यानुसंवत्सरः श्राद्धविधिः।

— प्रतिमा०, अंक ५, पृ० १५५

3. सीता- आर्यपुत्र ! निर्वर्तयिष्यति श्राद्धं भरत श्रद्धया, अवस्थानुरूपं फलोदकेनाप्यार्यपुत्र।

— प्रतिमा०, ५.५ के बाद का गद्य पृ० १५५

4. सर्वं श्रद्धया दत्तं श्राद्धम्।

-- प्रतिमा०, अंक ५ पृ० १३५

5. प्रतिमा०, अंक ५, पृ० १६१.

6. प्रतिमा० ,५.१०

7. धृतराष्ट्र :-

अद्यैव दास्यामि जलं हतेभ्यः स्वेनापराधेन तवात्मजेभ्यः।

न त्वस्मि शक्तः सलिलप्रदानैः कर्तुं नृपाणां शिविरोवरोधम् ॥

—दूतघटो०,१.१०

महाराजा की मृत्यु हो जाने पर उनका शरीर लोगों के दर्शनों के लिए प्रतिमागृह में रख दिया जाता था [1] 'प्रतिमागृह' की सफाई करके उसको सजाया भी जाता था , जैसे 'प्रतिमा' नाटक में महाराजा दशरथ की मृत्यु के पश्चात् सुधाकार प्रतिमागृह की सफाई के सम्बन्ध में कहता है -

'देख लीजिए - प्रतिमागृह के अपरिमार्जन से पक्षियों ने घोंसले बना लिए थे , वे हटा दिये गये हैं। दीवालें पुतवा दी गई हैं , उन पर पांचों अंगुलियों का आकार बना दिया गया है। द्वार पुष्प-मालाओं से सजा दिए गए हैं और सजावट के लिए चारों ओर रेत विछा दी गई है । आप ही कहिए यहां मैने क्या नहीं किया ।' [2]

6.2. धार्मिक सम्प्रदाय

धर्म - शास्त्रों में निपुण विद्वानों ने धर्म के विषय में अपने बल और बुद्धि के आधार पर भिन्न - भिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं , जिस के फलस्वरुप धर्म की अनेक शाखाएँ (सम्प्रदाय) हमारे सामने दृष्टिगोचर होती हैं ।

आलोच्य- नाटकों में धर्म की चार शाखाओं का संकेत मिलता है , जिन्हें ब्राह्मण , वैष्णव , शैव तथा बौद्ध के नाम से अभिहित किया गया है ।

---

1. भटः- नास्ति किलापराधो नास्ति। ननु मया सन्दिष्टो भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टकृतसन्तापेन स्वर्गं गतस्य भर्तुर्दशरथस्य प्रतिमागेहं द्रष्टुमद्य कौशल्यापुरोगैः सर्वैरन्तः पुरैरिहागन्तव्यमिति । अत्रेदानीं त्वया किं कृतम् ?

   — प्रतिमा., ३.१ के पूर्व का गद्य।

2. सुधाकर :- पश्यतु भर्ता अपनीतकपोतसन्दानकं तावद् गर्भगृहम्। सौधवर्णकदत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि। प्रकीर्णा बालुकाः। अत्रेदानीं मया किं न कृतम्?

   — प्रतिमा० , ३.१ के पूर्व का गद्य।

6.2.1. ब्राह्मण-धर्म

भास के युग में ब्राह्मण-धर्म का अखण्ड साम्राज्य था क्योंकि उन दिनों जनता का वेदों और शास्त्रों में अटल विश्वास था। शास्त्र - वचन जीवन के क्रियाकलापों में प्रमाण माने जाते थे।[1] सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और सभी क्षेत्रों में शास्त्र - सम्मत निर्णय ही मान्य होता था। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में भरतरोहक-युद्ध में जीते हुऐ शत्रु के विषय में यौगन्धरायण से (शास्त्र - सम्मत विधान) पूछता है -"राजनीति को जानते हुए भी आप ऐसी बात करते हैं। समर में पकड़े हुए शत्रु को शास्त्र में क्या विधान लिखा है?[2]"

6.2.2. वैदिक- कर्मकाण्ड

वैदिक-कर्मकाण्ड एवं यज्ञादि का विशेष महत्त्व होता था। लोगों की धार्मिक-क्रियाओं और यज्ञ - विधानों के प्रति अत्यन्त श्रद्धा होती थी। यज्ञानुष्ठान पृथ्वी पर स्वर्ग प्रदान करने वाला समझा जाता था। 'पंचरात्र' नाटक में दुर्योधन यज्ञ- रूप धर्मकृत्य करने से इसी पृथ्वी पर स्वर्ग का सुख अनुभव करता है।[3] 'यज्ञ क्रियाओं में दयादाक्षिण्यादि गुणों की समाहिति मानी जाती थी और उनसे मनुष्यों के समस्त कल्मष धुल जाते थे जैसे दुर्योधन कपटी तथा अयशोभागी होने पर भी यज्ञ-दीक्षित होने के कारण सुकृति के रूप में शोभायामान होता है।[4] उन दिनों गृहस्थ की दिनचर्या में पांच महायज्ञ[5] (ब्रह्मयज्ञ,

---

1. न जानाति भवान् शास्त्रमार्गम्।

— अवि०, अंक २, पृ० ५१

2. अपरोक्ष - राज्यव्यवहारो भवानिति ब्रवीति। समरावजितेषु शत्रुषु किमाह शास्त्रम्?

—प्रतिज्ञा, अं. ४, पृ. १२६

3. मृतैः प्राप्यः स्वर्गो यदिह कथयत्येतदनृतम्।
परोक्षो न स्वर्गो बहुगुणमिहैवैष फलति॥

— पंचरात्र, १.२३

4. पंचरात्र, १.२२
5. मनुस्मृति, ३.६९, ७०

पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और नृपयज्ञ) ' विद्यमान होते थे । वैदिक -देवताओं को भी विशेष महत्त्व प्राप्त था ।

समाज में ब्राह्मणों का सर्वोत्कृष्ट पद था । वे पृथ्वी पर पूज्यतम होते थे[1] तथा धार्मिक आयोजनों में उनको अग्रिम स्थान दिया जाता था ।

6.2.3. वैष्णव- धर्म

विवेच्य युग में ' वैष्णव- धर्म ' का उदय हो चुका था । वैदिककालीन विष्णु जो प्रकृति के दिव्य - शक्ति मात्र थे , वे इस युग में सर्वशक्तिमान् देवता बन गये थे । विष्णु, त्रैलोक्य के आदि कारण[2] तथा त्रिलोक में अभिनीत क्रिया-कलापों के सूत्रधार माने जाते थे ।[3] उनके अवतारों का अत्यधिक माहात्म्य था । भास के नाटकों में विष्णु के सात अवतारों - राम[4], कृष्ण[5], बलराम[6] , वराह [7], वामन[8], नृसिंह[9] और मत्स्य[10]

---

1. द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम् ।

   — मध्यम०, १.९

2. नमो भगवते त्रैलोक्यकारणाय नारायणाय।

   — अभि० अंक ४, पृ० ७७

3. दूत० घ० , १.१
4. अभि० १.१
5. वयमपि मनुष्यलोकमवतीर्णस्य भगवतो विष्णोर्बलिचरितमनुचरितुं गोपालकवेषप्रच्छन्ना घोषमेवावतरिष्यामः ।

   बा०च०, अंक १ , पृ० २०

6. स्व० वा०, १.१
7. अभि०, ६.३१
8. बा०च०,१.१
9. अवि० १.९
10. इह तु जगति नूनं रक्षणार्थं प्रजानाम्।
    असुरसमितिहन्ता विष्णुरद्यावतीर्णः ॥

    — बा०च०,१.९

का निरूपण मिलता है । विष्णु पृथ्वी पर धर्म की स्थापना और अधर्मियों का विनाश करने के लिए अवतार लेते हैं , यह उस समय का दृढ़ धार्मिक विश्वास था ।

6.2.4. शैव- मत

भास के काल में भिन्न- भिन्न दार्शनिक एवं धार्मिक मतों के साथ - साथ शैव - मतों की विचारधारा प्रवहमान थी ,जिस कारण शिव ही इस जगत् के रचयिता माने जाते थे । लोगों का विचार था कि जल, अग्नि, पुरोधा, रवि, शशि, आकाश, पृथ्वी और वायु शिव के आठ व्यक्त रूप हैं । शिव अखण्ड समाधि में बैठ कर समस्त भक्तों की अभिलाषाओं को पूर्ण करते हैं । उनका अर्द्धनारीश्वर रूप उपासना का विषय था।

6.2.5. बौद्ध -धर्म

आलोच्य-नाटकों में बौद्ध - धर्म का भी कहीं कहीं पर उल्लेख मिलता है । बौद्ध-धर्म उन्नति की ओर अग्रसर न होकर पतन की ओर गतिमान् था । इस धर्म में अनेक विकृतियों ने जन्म ले लिया था । धर्म का व्यावहारिक पक्ष समाप्त हो गया था और केवल सैद्धान्तिक पक्ष शेष रह गया था, जो केवल उपदेश का विषय मात्र था । जीवन में उसका पालन नहीं होता था । जनता की धर्मास्था विकृत हो गई थी, यहां तक कि संन्यासी भी चरित्रहीन हो गये थे[1] सांसारिक कष्टों से बचने के लिए लोग परिव्राजकत्व ग्रहण कर लेते थे।

6.2.6. पञ्चरात्रधर्म

लोकमान्य तिलक के अनुसार इस धर्म का अस्तित्व ई० पू० ६०० में विद्यमान था । श्री जगदीशदत्त का अभिमत है- 'भास पञ्चरात्र परम्परा से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने

---

1. विद्षक :- अहं खलु तावत् कर्तव्यकरस्त्रीकृतसङ्केत इव शाक्यश्रमणको निद्रां न लभे । वामं खलु मेऽक्षिस्पन्दते ।

— चारु० ३.९ के बाद का गद्य ।

'पञ्चरात्रम्'' नाटक की रचना की । पञ्चरात्रधर्म भागवत-सम्प्रदाय के अन्तर्गत ही आता है ।[1]

भास के 'पञ्चरात्रम् ' नाटक के अध्ययन से यह तो स्पष्ट है कि उन्होंने भगवान् के पांचों आयुधों का विशेष रूप से वर्णन किया है। ये पांचों आयुध अंश रूप में ऋषियों की तपस्या के प्रतिनिधि हैं । आयुध निर्जीव हैं परन्तु उनमें सजीवता का सन्निवेश पञ्चरात्र - धर्म आने की उत्पत्ति का सूचक है। नाटक में आयुधों के आने का वर्णन सजीव पात्र के रूप में किया गया है। पञ्चरात्रधर्म से प्रभावित होकर भास ने शाप जैसी निर्जीव वस्तु को भी सजीव पुरुष की भांति कंस के साथ वार्तालाप करते हुए चित्रित किया है।

6.3 देवता

धर्म और धार्मिक विचार - प्रणालियों का मूल आधार देवता है। देवताओं की अलौकिक शक्तियों पर विश्वास ही धर्म की नींव को दृढ़ करता है। भास कालीन समाज में 'बहुदेववाद' बद्धमूल हो चुका था, लोगों की अनेक देवी - देवताओं में आस्था बढ़ गई थी। आलोच्य- नाटकों में जिन देवी देवताओं का उल्लेख हुआ है, वे ये हैं - कृष्ण,[2] शिव,[3] विष्णु,[4] इन्द्र,[5] वरुण,[6] अग्नि,[7] रुद्र,[8] मरुत,[9] यम,[10] कामदेव,[11]

---

1. भास की भाषा सम्बन्धी तथा नाटकीय विशेषताएँ, आर्य बुक डिपो, १० नाईबाला, करौल बाग, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण , पृ २३५.
2. पञ्च० १.१, ऊरु० १.१
3. पञ्च० १.१६
4. बाल० १.९, कर्ण० १.१, दूतघ० १.१
5. प्रतिज्ञा० ३.१ के बाद का गद्य।
6. अभि०, १.३
7. अभि०, अंक ६, पृ० ११९
8. अभि० ६.३०
9. - वही-
10. अभि० अंक ६, पृ० १२३
11. अवि०, अंक ३,पृ० ७९

चंद्र,[1] लक्ष्मी,[2] कात्यायनी,[3] सरस्वती,[4] यक्षिणी[5] आदि।

6.3.1 श्री कृष्ण

श्री कृष्ण को देवता के समान पूजा जाता था । उनकी प्रार्थना सब लोगों के कल्याण के लिए की जाती थी। [6] श्री कृष्ण की शत्रुओं पर विजय पाने के लिए भी पूजा की जाती थी [7]।

6.3.2 शिव

लोग शिव को देवता मान कर उनकी उपासना करते थे ।[8] शिव की पूजा लड्डुओं के नैवेद्य से की जाती थी। [9] शिव को रक्षक के रूप में माना जाता था [10]।

---

1. अभि०, ६.३०
2. अवि० २.३
3. अवि० अंक ३ पृ० ७४
4. अभि०, ६.३०
5. प्रतिज्ञा०,३.५ के बाद का गद्य।
6. द्रोण: पृथिव्यर्जुनभीमदूतो कर्णधार: शकुनीश्वरस्य।
   दुर्योधनो भीष्मयुधिष्ठिर: स पायाद् विराडुत्तरगोऽभिमन्युः॥

   पञ्च.१.१
7. भीष्मद्रोणतटां जयद्रथजलां गान्धारराजह्रदां
   कर्णद्रौणिकृपोर्मिनक्रमकरां दुर्योधनस्रोतसम्।
   तीर्ण:शत्रुनदीं शरासिसिकतां येन प्लवेनार्जुन:
   शत्रूणां तरणेषु व: स भगवानस्तु प्लव: केशव:॥

   —ऊरु०, १.१, पृ० १-२
8. पञ्च० १.१६
9. भो:! एष खलु मम मोदकमल्लक: शिवस्य पादमूले तिष्ठति।
   देहि भर्त: !त्वमपि चोरोऽसि। अहमिव शिवोऽपि तावद् एतस्मिन् मोदकमल्लके निराशो भवतु।

   - प्रतिज्ञा०, ३.१ के पूर्व का गद्य।
10. इदानीं राज्यविभ्रष्टं सुग्रीवं रामलक्ष्मणौ।
    पुन: स्थापयितुं प्राप्ताविन्द्रं हरिहराविव॥ अभि., १.३

6.3.3विष्णु

आलोच्य युग में विष्णु को सर्वशक्तिमान और त्रिलोकी का आदि कारण माना जाता था।[1] इसका वाहन गरुड़ पक्षी माना जाता था।[2] यह धर्मसंस्थापना के लिए नाना प्रकार के अवतार ग्रहण करता था।[3] लोग विष्णु को कल्याण करने वाला समझते थे[4] तथा उसकी आराधना पूर्ण श्रद्धाभाव से करते थे।[5]

6.3.4 इन्द्र

देवताओं में इन्द्र का भी नाम मिलता है।[6] वह देवताओं का अधीश्वर था।[7] मेघों पर इसका आधिपत्य था । इन्द्र के सम्मान में 'शक्रध्वजोत्सव'[8] और 'इन्द्रयज्ञ' जैसे समारोह आयोजित किये जाते थे।

---

1. नमो भगवते त्रैलोक्यकारणाय नारायणाय।
   — अभि०, अंक ४, पृ० ७७
2. अये अयं भगवतो वाहनो गरुडः प्राप्तः ।
   — दूत०वा०, अंक १, पृ० ४४
3. वासुदेव :-
   इह तु जगति नूनं रक्षणार्थं प्रजाना -
   मसुरसमितिहन्ता विष्णुरद्यावतीर्णः॥
   -बाल. १-९
4. नरमृगपतिवर्ष्मालोकनभ्रान्तनारी
   नरदनुजसुपर्वव्रातपाताललोकः।
   करकुलिशपालीभिन्नदैत्येन्द्रवक्षाः
   सुररिपुबलहन्ता श्रीधरोऽस्तु श्रिये वः॥
   — कर्ण १.१
5. नारायणस्त्रिभुवनैकपरायणो वः
   पायादुपायशतयुक्तिकरः सुराणाम्।
   लोकत्रयाविरतनाटकतन्त्रवस्तु-
   प्रस्तावनाप्रतिसमापनसूत्रधारः॥
   —दूतघ., १.१
6. आम ऐरावणोऽहम् । न खलु तावद् देवराजो मामासनमारोहति।
   — प्रतिज्ञा०, अंक ३.१ के बाद का गद्य।
7. न खलु देवराजो मामासनमारोहति।
   — प्रतिज्ञा०, अंक ३ , पृ० ८०
8. मध्यम०, १.४७

6.3.5 वरुण

यह जल का देवता माना जाता है।[1] कुषाण और गुप्त मूर्तियों में यह मगर पर बैठा हुआ दिखाया गया है। पापियों को दण्ड देने के लिए इसने हाथ में पाश लिया हुआ है।[2]

6.3.6 अग्नि

इसको देवताओं का मुखी माना जाता है।[3] यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठानों में इसका विशेष महत्त्व होता है।[4] राजगृहों में प्रासाद से पृथक् अग्न्यागार होते थे जहां अग्नि निरन्तर प्रदीप्त रखी जाती थी ।

6.3.7 रुद्र

यह वैदिक काल के समय का साधारण-स्तर का देवता माना गया है जो गुप्त-काल तक धीरे - धीरे महत्त्वपूर्ण देवता बन गया था । तत्पश्चात् इस का सम्बन्ध शिव से जोड़ा जाने लगा औार अन्त में यह शिव का विध्वंसकारी रूप-मात्र रह गया।[5] इसका प्रमुख अस्त्र 'परशु' है।[6]

6.3.8 मरुत्

भास के युग में इसे प्रसिद्ध देवता के रूप में नहीं दिखाया गया है। परन्तु वैदिक देवता के रूप में मरुत की प्रतिष्ठा विद्यमान थी।'मरुत्' देवों का एक पृथक् समुदाय है।[7] ऋग्वेद में इस समुदाय का वर्णन वृष्टि- देवता के रूप में किया गया है।[8]

---

1. पश्य-पश्य भगवत्प्रसादानिष्कम्पवीचिमन्तं सलिलाधिपतिम् ।
   — अभि०, अंक ४, पृ० ७९
2. भगवतशरण उपाध्याय :
   कालिदास का भारत, भाग २, पृ०, १२६
3. तृप्तोऽग्निर्हविषमरोत्तममुखम् ।
4. - वही - — पंच०, १.४
5. डा० जगदीशचन्द्र जोशी,प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ० २८१-८२
6. चिरं मूले दग्ध: परशुरिव रुद्रस्य पतति ।
   — पंचरात्र, १.१६
7. सब्रह्मोन्द्रमरुद्गणं त्रिभुवनं सृष्टं त्वयैव प्रभो।
   — अभि०, ६.३०
8. ऋग्वेद, ८.७.१६

6.3.9 यम

यह वैदिक - देवता के रूप में प्रतिष्ठित है। इसको ऋग्वेद में मृतकों का नृप दर्शया गया है।[1] कालान्तर में यही मृत्यु का देवता भाना जाने लगा ।

6.3.10 कामदेव

यह 'श्रृङ्गार रस' का देवता है 'वसन्तोत्सव' के समय इसकी आम्र-मंजरियों द्वारा पूजा की जाती है।

6.3.11 चन्द्र

इस को औषधियों का स्वामी माना जाता है।

6.3.12 लक्ष्मी

यह ऐश्वर्य एवं वैभव की अधिष्ठात्री देवी मानी गई है। इसे विष्णु की अर्धांगिनी माना जाता है।[2] लोग धन प्राप्ति हेतु इसकी पूजा करते थे और वर्तमान में कर भी रहे हैं ।

6.3.13 कात्यायनी

इसे शुम्भ, निशुम्भ और महिषासुर का वध करने वाली देवी माना जाता है।[3] कुण्डोदर सर्प, शंकुकर्ण शूल, नील और मनोजव आदि जीव एवं पदार्थ दुराचारियों के विनाश के समय इस देवी की सहायता करते थे[4] तथा इस का गुण गान बहुत करते थे ।[5]

6.3.14 सरस्वती

यह वाणी की अधिष्ठात्री देवी है। यह भारती रूप शब्द से अभिहित की जाती है।[6]

6.3.15 यक्षिणी

भास के युग में इसकी पूजा का बड़ा महत्त्व था ।[7]

---

1. ऋग्वेद,१०.१४.१
2. स्व० वा०, १.१
3. बा० च०, २.२०
4. बा० च०, अंक २, पृ०, ३८
5. नम: प्रजापतये ।नम: सर्वसिद्धेभ्य: ।प्रसीदन्तु बलिशम्बरमहाकाला: ।जयतु भगवती कात्यायनी ।
   — अवि० ३.१२ के पूर्व का गद्य!
6. अभि०, ६.३०
7. भगवत्या यक्षिण्या: स्थानं, तस्मिन् देवकार्य कर्तु गतासीत्।
   प्रतिज्ञा०, ३.५ के बाद का गद्य।

6.4 अर्ध देवता

देवताओं के अतिरिक्त आलोच्य नाटको में सिद्ध,[1] विद्याधर,[2] गन्धर्व[3] और अप्सराओं[4] का नामोल्लेख भी हुआ है। इनको 'अर्ध-देवता' माना जाता था।

6.5 धर्माचरण

इसके अन्तर्गत यज्ञ, व्रत, उपवास, देवार्चन , सन्ध्या-वन्दन, तपश्चर्या , तीर्थयात्रा , शोडष-संस्कार तथा अतिथि-सत्कार आदि का समावेश किया गया है।

6.6 यज्ञ

भास के समय यज्ञों का विशेष महत्त्व था । धर्माचरण के लिए इसे प्रमुख अंग समझा जाता था। यश-प्राप्ति हेतु यज्ञों का आयोजन किया जाता था । श्रद्धा और विधि पूर्वक यज्ञ करने से पृथ्वी पर ही स्वर्ग की प्राप्ति समझी जाती थी।[5]

यज्ञ करने से पूर्व यजमान को धार्मिक संस्कारों से दीक्षित किया जाता था।[6] यज्ञ की समाप्ति पर 'अवभृथ' नामक धार्मिक -क्रिया की जाती थी।[7] अवभृथ-स्नान तक अग्नि को वेदी के बाहर नहीं निकाला जाता था।[8] यज्ञ के लिए स्तंभ बनाए जाते थे और वेदी की स्थापना की जाती थी।[9] यज्ञ के अन्त में पुरोहितों तथा ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा दी जाती थी। जैसे 'पंचरात्र' में दुर्योधन यज्ञ समाप्ति पर ब्राह्मणों को प्रभूत दक्षिणा देकर तृप्त करता

---

1. अभि०, अंक ६., पृ० १२२
2. - वही -
3. - वही -
4. - वही -
5. पंचरात्र, १.२३
6. नृपे दीक्षां प्राप्ते जगदपि समं दीक्षितमिव।
   — पंचरात्र, १.३
7. एहि एहि पुत्र। एवमेवावभृथस्नानेषु खेदमवाप्नुहि ।
   — पंच०, अंक १, पृ० २१
8. अनवसितेऽवभृथस्नाने न खलु तावदग्निरुत्स्रष्टव्यो भवद्भि : ।
   — पंच०, १.५ के बाद का गद्य।
9. पंचरात्र, १.६

है।[1] दक्षिणाओं के अतिरिक्त यज्ञों में आशीर्वाद भी दिए जाते थे।[2]

यज्ञ की सफलता पर राजा लोग बधाई दिया करते थे, जैसे 'पंचरात्र' में राजा भूरिश्रवा, जरासंध का बेटा सहदेव, अभिमन्यु आदि दुर्योधन को यज्ञ की सफलता पर बधाई देते हैं। समस्त राजा लोग भी बधाई देने आते थे।[3] राजा लोग यज्ञ करते थे और अपने परिवार के साथ यज्ञ में भाग लेते थे,[4] ब्राह्मण लोग यज्ञ की भरपूर प्रशंसा करते थे।[5] उन्हें यज्ञ के अवसरों पर तृप्त किया जाता था, जैसे 'पंचरात्र' में दुर्योधन यज्ञ के विषय में ब्राह्मण को कहता है:--

'हवि से देवताओं के मुख अग्निदेव तृप्त हो गये हैं, यज्ञ में प्राप्तधन से विप्रगण तृप्त हो गये हैं, गोगण (पशुसमूह) के साथ पक्षिगण भी प्रसन्न हो रहे हैं- समस्त मानव आनन्दित हैं। इस प्रकार यह समस्त विश्व प्रसन्न दिखाई दे रहा है। महाराज के सद्गुणों से यह मर्त्यलोक स्वर्ग का अतिक्रमण कर रहा है।'[6]

---

1. (क) पंचरात्र १.२८
   (ख) तृप्ता द्विजेन्द्रा धनैः।
   — पंचरात्र, १.४
   (ग) दुर्योधन :- भो आचार्य ! धर्मे धनुषि चाचार्य !
   प्रतिगृह्यतां दक्षिणा।
   — पंच०, १.२९ के बाद का गद्य।
2. एवमेव क्रतून् सर्वान् समानीयाप्तदक्षिणान्।
   राजसूये नृपञ्जित्वा जरासन्ध इवानय ॥
   — पंच०, १.२८
3. एतत् सर्वं राजमण्डल भवन्तं सभाजयति
   पंचरात्र १.२९ के बाद का गद्य।
4. सर्वैरन्तः पुरैः सार्धं प्रीत्या प्राप्तेषु राजसु।
   यज्ञो दुर्योधनस्यैष कुरुराजस्य वर्तते।।
   — पंच०, १.२
5. सर्वे-अहो कुरुराजस्य यज्ञसमृद्धिः।
   — पंच०, १.२ के बाद का गद्य।
6. तृप्तोऽग्निर्हविषाऽमरोत्तममुखं तृप्ता द्विजेन्द्रा धनै
   स्तृप्ताः पक्षिगणाश्च गोगणयुतास्ते नराः सर्वशः।
   हृष्टं सम्प्रति सर्वतो जगदिदं गर्जन्नृपे सद्गुणै-
   रेवं लोकमुदारुरोह सकलं देवालयं तद् गुणैः॥
   — पञ्च०, १.४

यज्ञों में विशेष रूप से राजसूय,[1] विश्वजित्,[2] शतकुम्भ[3] और अग्निष्टोम[4] आदि यज्ञों का विवेच्य नाटकों में वर्णन हुआ है। यज्ञ में व्रत भी किए जाते थे।[5] तत्कालीन समाज में इन्द्र-यज्ञ की विशेष प्रसिद्धि थी।[6]

राजसूय-यज्ञ, 'अश्वमेध-यज्ञ' के समान विशाल राजयज्ञ माना जाता था । समस्त विपक्षी राजाओं का विजेता इस यज्ञानुष्ठान का अधिकारी माना जाता था।[7] विश्वजित् - यज्ञ में राजा लोग अपनी समस्त सम्पत्ति दान कर देते थे । यह समझा जाता था, कि राजाओं ने धर्म के प्रदीप को प्रकाशित कर दिया है।[8] 'शतकुम्भ' और 'अग्निष्टोम' यज्ञ अश्वमेधादि के समान विशाल यज्ञ नहीं थे और न ही इनका राजनीतिक-दृष्टि से विशेष महत्त्व था।

---

1. पंचरात्र, १.२८
2. अयं खलु तावत् सन्निहितसर्वरत्नस्य विश्वजितो यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्वलितधर्मप्रदीपो दिलीप :।

   — प्रतिमा०, अंक ३, पृ० ७९
3. —— शतकुम्भं नाम यज्ञमनुभवितु:

   — मध्यम० , अंक १, पृ० ११
4. तेन ह्यग्निष्टोमफलं ददामि।

   — कर्णभार, अंक १, पृ० २१
5. पञ्च०, १.२९
6. नन्दगोप: --

   श्वोऽस्माकं घोषस्योचित इन्द्रयज्ञो नामोत्सवो भविष्यति।

   — बाल०, १.९ के बाद का गद्य।
7. एवमेव क्रतून् सर्वान् समानीयाप्तदक्षिणान् ।

   राजसूये नृपाञ्जित्वा जरासन्ध इवानय ॥

   — पञ्च०, १.२८
8. — प्रतिमा., अंक ३, पृ० ९९

6.7 व्रत उपवास

व्रत भी उन दिनों धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हुआ करते थे । तिथि- विशेष पर अभीष्ट-सिद्धि के लिए व्रत और उपवास रखे जाते थे । पंचरात्र में व्रतों के कारण दुर्योधन का शरीर अतीव कृश हो गया था।[1] इसी प्रकार 'चारुदत्त' नाटक में नटी जन्मान्तर में भी अपने पति को ही पतिरूप में प्राप्त करने हेतु 'अभिरूपपति' नामक व्रत का आयोजन करती है।[2] राक्षसों की स्त्रियां भी उपवास किया करती थीं। उपवास की पालना के लिए वे किसी मनुष्य की बलि चाहती थीं।[3]

6.8 पूजा

लोगों का पूजा में इतना विश्वास था कि वे पूजा विशेष द्वारा यह अनुमान लगा लेते थे कि कार्य की सिद्धि हो गयी है या नहीं?[4] तत्कालीन युग में 'चतुर्दशी' का पूजन भी किया जाता था।[5] लोगों का विश्वास था कि देवता, भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं । इस लिए लोग अपनी आर्थिक - स्थिति के अनुरूप पूजा किया करते थे।[6] इन्द्र और भगवान् शिव की पूजा की जाती थी । भगवान् अगस्त्य की आराधना भी की जाती थी।[7] और

1. क्रतुव्रतैस्ते तनु गात्रमेतत्।

— पंच०, १.२९

2. चारु०, अंक १, पृ० ५

3. घटोत्कचः- अस्ति मे तत्रभवती जननी। तयाऽहमाज्ञप्तः । पुत्र! ममोपवासनिसर्गार्थमस्मिन्वनप्रदेशे कश्चिन्मानुषः प्रतिगृह्यानेतव्य इति। ततो मयाऽऽसादितो भवान् ।

— मध्य०, १.११ के बाद का गद्य।

4. संवाहक : (स्वगतम्) पूजाविशेषेण जानामि कार्यमिति।

— चारु०, अंक २, पृ०,५१

5. अद्य चतुर्दशी स्नायमानः प्रतिपलितश्च।

— प्रतिज्ञा०, ३.३ के बाद का गद्य।

6. मूर्ख ! यथाविभवेनार्च्यताम् । भक्त्या तुष्यन्ति दैवतानि। तद् गम्यताम् ।

— चारु०, १.२१ के बाद का गद्य।

7 - प्रतिज्ञा०, १.१

उसकी आराधना के लिए विद्या-धर जैसे उत्सवों का भी समायोजन किया जाता था।[1] देव मूर्तियों को अतीव श्रद्धा के साथ प्रणाम किया जाता था। विना मन्त्र पढ़े प्रणाम करना अच्छा नहीं समझा जाता था।[2] लोग विष्णु की भी पूजा करते थे।[3] सभी देवताओं की पुष्प आदि से पूजा की जाती थी । वृक्षों की भी पूजा की जाती थी।[4] जिस आम्र के वृक्ष की मंजरी निकल आई हो, उसकी उपासना अच्छी समझी जाती थी।[5]

6.9 शान्ति पाठ

अपशकुनों से छुटकारा पाने के लिए शान्ति-कर्म, शान्ति -पाठ आदि भी किए ज़ाते थे।[6]

अत: स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है कि भास के नाटकों में ब्राह्मण धर्म के सिद्धान्तों का खुलकर उल्लेख हुआ है । यदि भास को ब्राह्मण संस्कृति के चतुर चितेरा मान लिया जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

---

1. अवि०, अंक ४,पृ० १०२
2. प्रतिमा० ३.५
3. दूतवा०, १.१
4. प्रतिमा०, अंक ५, पृ० १५१
5. चारु० अंक २,पृ० ४७
6. राजा-अये प्रभाता रजनी
   अत: प्रविश्य शान्त्यर्थं शान्तिकर्मोचितं गृहम्।
   करोमि विपुलां शान्तिं मम शान्तिर्भविष्यति॥

   बाल०, २.२५